बृहत्पाराशर होराशास्त्र में भाव और आयु का व्याख्यात्मक विवेचन

[1]Narayan Kumar Jha
[1]Research Scholar
[1]University Department of Sanskrit,
[1]Lalit Narayan Mithila University, Kameshwarnagar, Darbhanga (Bihar) - 846004

सारांश : पाराशरीय मत का अध्ययन कर मारक दशान्तर्दशा का विचार कर व योगायु से प्राप्त अनुमान के साथ उसका समन्वय कर मारक दशा का निर्णय करना चाहिए। "इतने ही वर्ष की आयु होगी हम इसके पक्षधर नहीं हैं। आयु तो योगिगम्य पदार्थ है। तथापि ज्योतिष शास्त्र की सहायता से हम मार्ग–निद काफी सटीक ढंग से ले सकते हैं। लग्न शरीर है व चन्द्रमा प्राण है। देह व प्राण की मजबूती आयु बढाती है। इन पर यदि शुभ प्रभाव भी हो तो आयु और बढ़ जाएगी। । लग्नेश की अति बलवत्ता होने पर आय दीर्घ होती है, यह निविय यदि लग्नेश बली होकर लग्न में ही बैठ जाए या केन्द्र में हो तो शुभ त्रिकोणों में बैठकर उसे देखते हों तो व्यक्ति लम्बे समय तक सुख भोगते हुए जीवित रहेगा।

IndexTerms* - *दशा, होरा, योग, आयु।

भाव एक तकनीकी शब्द है जिसका प्रयोग ज्योतिष में आमतौर पर किया जाता है। इसका अर्थ होता है स्थान या जन्म–कुण्डली में बनने वाले कोष्ठक। इन्हें भवन भी कहा जाता है। जन्म कुण्डली में या अन्य चलित जैसी जन्म कुण्डली में ये बारह की संख्या में ही बनाये जाते हैं। जिनकी रचना में कोणिक या वर्त्तुल (दोनों ही) विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। कुण्डली के लिए प्रयुक्त जन्मांग शब्द जन्म से सम्बद्ध इतर पक्षों का सूचक होने के कारण सार्थक और कुण्डली शब्द इसलिए सार्थक लगता है कि ग्रहों का अयन पथ ऋजु या कोणिक न होकर वलयवत् है, भले ही वह बिल्कुल वर्त्तुल न हो।

कुण्डली में ये कोष्ठक या भाव बारह ही क्यों होते हैं – इस प्रश्न का उत्तर ज्योतिष में बारह की संख्या के महत्त्व हैं – बारह मास, राशियाँ जैसे प्रतीको से इनका कोई सामंजस्य बैठने के लिए कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रखता। इसके मूल में ऐसी कोई कल्पना नहीं रही हो, तो दूसरी बात है।

जन्मांग की चतुष्कोणीय आकृति में सूक्ष्म एवं साधारण कारण अवश्य दिखता है, जो जन्मांग शब्द की पूरी प्रतिकार्थता को सिद्धक करता है। एक क्षण को हम जन्मांग की केवल रेखा रचना को देखें तो लगेगा कि दो चतुभुजों को जिसमें दूसरा (भीतर वाला) पहले से (बाहर वाले से) बिल्कुल (क्षेत्रफल में) आधा है। इसके केन्द्रों से कोणों तक रेखांकित या ऋजु रेखा से काटने पर बारह कोष्ठक बन जाते हैं।

भावों की क्रम संख्या घड़ी की सूइयों के चलने की दिशा से उलटी दिशा में चलती है। यह क्रम संख्या कुंडली में लिखी नहीं जाती है, बल्कि भाव की स्थिति से नियत मान ली जाती है तथा किसी भी भाव में जो राशि स्थित है उस राशि की संख्या उस भाव में अंकित की जाती है। दक्षिण भारत मतें जो कुंडली बनाई जाती है उसमें राशि की क्रम संख्या स्थिर रहती है तथा जिस राशि में लग्न स्थित होती है उस भाव में 'लग्न' शब्द लिख दिया जाता है और इसे 'प्रथम भाव' समझकर वामावर्त्त द्वितीय–तृतीय आदि भावों को माना जाता है। प्रत्येक भाव शरीर के किसी विशेष अंग व मनुष्य के जीवन के किसी विशेष क्रिया '– कलाप को दिखाता है। जिस प्रकार हम जानते हैं कि मनुष्य के शरीर में छाती में अंदर फेफड़े होते हैं या पेट में दाईं ओर लीवर होता है। इन अंगों में कष्ट होने पर एक्स रे या अल्ट्रासाउंड द्वारा उस विशेष अंग की स्थिति की जानकारी प्राप्त की जाती है, ठीक उसी प्रकार जिस भाव से जो अंग या क्रिया कलाप होता है उस भाव की स्थिति राशि, ग्रह के अनुसार समझा जा सकता है। भावों की संज्ञा के विषय में पाराशर होराशास्त्र में कहा भी गया है –

लग्नादिव्ययपर्यन्तं भावाः संज्ञानुरूपतः।

फलदाः शुभसंदृष्टाः युक्ता वा शोभनप्रदाः।।

पापदृष्टयुता भावाः कल्याणेत्तर दायकाः।

नितरां शत्रुनीचस्थैर्न मित्रोच्चगतैश्च तैः।।

सौम्यैर्दृष्टयुता भावाः ग्रहवीर्यात्फलप्रदाः।[1]

अर्थात् लग्न से व्यय पर्यन्त, प्रथम भाव से बारहवें भाव तक जो भावों की संज्ञा होती है उसी संज्ञा के अनुसार भाव, शुभग्रहों से दृष्ट या युत होने पर बली ग्रह के तुल्य भावजन्य शुभफल कारे देता है। और पापग्रहों से दृष्ट या युत होने पर तथा शत्रु नीच राशि में स्थित ग्रह से दृष्ट या युत भाव अशुभ फल प्रदान करता है। मित्र या उच्च राशिस्थ ग्रह भावजन्य अशुभ फल नहीं देता है।

किसी भी भाव में जो राशि स्थित है उस राशि के स्वामी को ही उस भाव का स्वामी / भावेश कहा जाता है। जैसे – यदि चतुर्थ भाव में मेष राशि है तो मेष राशि के स्वामी मंगल को ही 'चतुर्थेष' कहा जाता है।

1 पाराशर होराशास्त्र, अध्याय 1, राशिप्रभेद पेज संख्या – 51।

भावों के नाम तथा उनके स्वामी

भाव संख्या	भाव के नाम	भाव के कारक
प्रथम	तनु भाव	सूर्य
द्वितीय	धन भाव	बुध
तृतीय	सहज भाव	मंगल
चतुर्थ	मातृ या सुख भाव	चन्द्र और बुध
पंचम	सुत भाव	बृहस्पति
षष्ठ	शत्रु भाव	शनि और मंगल
सप्तम	जाया भाव	शुक्र
अष्टम	रंध्र भाव	शनि
नवम	भाग्य भाव	सूर्य एवं बुध
दशम	राज्य या पितृ भाव	सूर्य, बुध, बुहस्पति एवं शनि
एकादश	आय भाव	बृहस्पति
द्वादश	व्यय भाव	शनि

लग्न, शारीरिक गठन, सिर, रूप, ज्ञान, रंग, सामान्य स्वभाव, वर्त्तमान काल का विचार प्रथम भाव से किया जाता है। किसी भी व्यक्ति के जन्म कुंडली का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग प्रथम भाव होता है। यदि प्रथम भाव शक्तिशाली है तो अन्य किसी भाव की कमजोर स्थिति को भी वह व्यक्ति अपने परिश्रम व बुद्धि से दूर कर ही लेता है। यदि प्रथम भाव बलशाली नहीं है तो अन्य किसी भाव के सबल होने पर भी जीवनपर्यन्त उसका शुभ–लाभ प्राप्त नहीं होगा, केवल उस भाव से संबंधित ग्रहों की दशा व अंतर्दशा में यथेष्ट लाभ होगा।[2] जातक के शरीर की संरचना तथा मानसिकता प्रथम भाव में स्थित राशि, ग्रह तथा अन्य ग्रह जिनकी दृष्टि प्रथम भाव पर पड़ रही है उसको भी समझना होता है। महर्षि पराशर कहते हैं कि शरीर, रूप, वर्ण ज्ञान, बलाबल, स्वभाव, सुख–दुःख इन सभी चीजों के लिए तनुभाव को जानना जरूरी होता है।[3] अन्य जगहों पर भी कहा गया है कि यदि प्रथम भाव को विस्तार से जानना हो तो शरीर के वर्ण आकृति और लक्षादि से इस भाव को समझा जा सकता है।[4] इसी प्रकार कुटुम्ब, धन[5], धान्य, मृत्यु, शत्रु, धातु–रत्न आदि का विचार धन भाव से किया जाता है।[6] तीसरे भाव से जातक के पराक्रम[7], मृत्यु, भाई, उपदेश, यात्रा, तथा माता–पिता के मरण का आदि का विचार होता है[8]। वन्धु वान्धव, वाहन, मातृसुख, खजाना, जमीन, घर, बगीचा आदियों का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए[9]। यन्त्र, मन्त्र, विद्या, बुद्धि–वैभव पुत्र[10], राज्यापभ्रंश, इत्यादि का विचार पञ्चम भाव से[11] । मामा, मरणऽऽशङ्का, शत्रु व्रण आदि, का विचार षष्ठ भाव से[12]। स्त्री[13], मार्ग–यात्रा, पद–प्राप्ति, वाणिज्य, अपना मरण का विचार जाया

---

2 भारतीय ज्योतिष विज्ञान, रविन्द्र कुमार दूबे, पेज संख्या 86।

3 तनुं रूपं च ज्ञानं च वर्णं चौव बलाबलम् ।
प्रकृतिं सुख–दुःखं च तनुभावाद् विचिन्तयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 2, पृष्ठ संख्या 80।

4 "शरीरवर्णाकृतिलक्षणानि यशोगुणस्थान–सुखासुखानि।' वहीं।

5 'वित्तं नेत्रं मुखं वियँा वाक् कुटुम्बाशनानि च।'वहीं।

6 कुटुम्वं च धनं धान्यं मृत्युजालममित्रकम् ।
धातुरत्नादिकं सर्व धनस्थानानिरीक्षयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 3, पृष्ठ संख्या 80।

7 ज्येष्ठानुजस्थितिपराक्रमसाहसानि। वहीं।

8 विक्रमं भृत्य–भ्रात्रादि चोपदेश–प्रयाणकम् ।
पित्रोवें मरणं विद्वान् दुश्चिक्याच निरीक्षयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 4, पृष्ठ संख्या 80।

9 बान्धवानथ यानानि मातृसौख्यादिकान्यपि ।
निधिक्षेत्र–गृहारामादिकं तुयोद् विचारयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 5, पृष्ठ संख्या 80।

10 "पुत्रादेव महीपपुत्र–पितृधीपुण्यानि सञ्चिन्तयेत्।" वहीं।

11 यन्त्रं मन्त्र तथा विद्यां बुद्धेश्चौव प्रबन्धकम् ।
पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत् पुत्रालयाद् बुधः।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 6, पृष्ठ संख्या 81।

12 'रोगारि–व्यसन–क्षतानि वसुधापुत्रारितश्चिन्तयेत्"। वहीं।

13 ''रणाङ्गणं चापि वणिक क्रियाश्च जायाविचारागमनप्रयाणम्"। वहीं।

भाव से[14] । आयु[15], मृत्युस्थान, बवासीर, भगन्दर आदि, पूर्वजन्म वृत्त आदि अष्टम भाव से विचार करना चाहिये[16] । भाग्य, श्याल (साला), भाभी आदि, तीर्थयात्रा इनका विचार धर्म (नवम) भाव से[17] । राज्य, आकाशवृत, पिता, सम्मान, ऋण, प्रवास इन सब का दशम भाव से[18] अनेकविध वस्तुओं की उत्पत्ति, पुत्र, स्त्री, आदि, आय, पशुसमृद्धि इनका एकादश भाव ले[19] । व्यय, शत्रु–वृत्तान्त, रिफ, अन्य (मृत्यु) आदि का विचार व्यय (बादश) भाव से करना चाहिए[20]। जातक पारिजात के अनुसार जो जो भाव शुभग्रह, या अपने स्वामी से युत अथवा दृष्ट हों, जिसका पति (भावेश) युवा, प्रबुद्ध, कुमारादि अवस्थागत हो, और उसकी दृष्टि भाव पर पड़ती हो तो उस भाव का फल शुभप्रद अन्यथा अर्थात् भावेश नष्टादि अवस्थागत हों, त्रिकेशादि (६ । ८ । १२ । ३ । ११ स्थानों के अधिप) से संयुक्त हों और अपने भाव को नहीं देखता हो तो भाव फल का नाश कहना चाहिये।[21] इसी प्रकार प्रायः सभी अर्वाचीन जातककारों ने भी अपने अपने ग्रन्थों में भाव फल की वृद्धि या हानि के सम्बन्ध में ऐसा ही कहा है।

प्रथम भाव : तनु भाव

लग्नेश केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) या त्रिकोण (६ । ५) में स्थित हो) तो जातक को शारीरिक सौख्य होता है ।[22] वही (लग्नेश) यदि त्रिक (६ । ८ । १२) गत होकर पापग्रह से युक्त हों तो शारीरिक सौख्य नहीं कहना चाहिये। लग्नेश यदि अस्तङ्गत हों, नीच स्थान, या शत्रुक्षेत्रगत हों तो शरीर में रोग कहना चाहिए । द्य किन्तु शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण स्थान गत हों तो रोगों से मुक्त शरीर कहें।[23] लग्नेश, बुध, गुरु अथवा शुक्र केन्द्र या त्रिकोण गत हो तो जातक दीर्घायु, मतिमान् , धनी, तथा राजप्रिय होता है।[24] चराशिगत लग्नेश यदि शुभ ग्रह से इष्ट हो तो भी जातक यशस्वी, धनी, शारीरिकसौख्य–सम्पन्न, तथा भोगेन्द्र होता है।[25] चन्द्रयुक्त गुरु, बुध, या शुक्र लग्न या केन्द्र में हो तो जातक राजलक्षण युक्त होता है। मेष, वृष, या सिंह लग्न में शनि या मंगल हों, तो लग्न में जिस राशि का नवांश हो वह अङ्ग जन्म के समय नाल–वेष्टित रहता है ।[26] सूर्य यदि चतुष्पद राशिगत हों, अन्य प्रबल ग्रह द्विस्वभाव राशिगत होवें तो यमल (युग्म) का जन्म होता है, अर्थात् दो बच्चे होते हैं। रवि–चन्द्र या यदि एक राशिस्थ होते हुए एक ही नवांश में हो तो जातक जन्म से तीन मास तक तीन माताओं के दूध से, बाद पिता और भाई के द्वारा पोषित किया जाता है। इसी तरह चन्द्रमा पर से भी फलादेश करना चाहिये। लग्न यदि प्रथम द्रेष्काण गत हो तो लग्न शीर्ष, लग्न

---

14 मातुलं मृत्यु शङ्काश्च शत्रूश्चौव ब्रणादिकान् ।
सपत्नीमातरं चापि शत्रुस्थानानिरीक्षयेत् ।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 7, पृष्ठ संख्या 81।

15 आयुर्मृत्युपरं चापि गुदे चौवाङ्करादिकम् ।
पूर्वापर–जनुर्वृत्तं सर्व रन्ध्राद् विचिन्तयेत्।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक 9, पृष्ठ संख्या 81।

16 जायामध्वप्रयाणं च पदाप्तिं च वणिक–क्रियाम् ।
मरणं च स्वदेहस्य जायाभावानिरीक्षयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 8, पृष्ठ संख्या 81।

17 धर्म भाग्यमथो श्यालं भ्रातृ–पत्न्यादिकांस्तथा ।
तीर्थयात्रादिकं सर्वं धर्मस्थानानिरीक्ष येत्।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 10, पृष्ठ संख्या 81।

18 राज्य चाकाशवृत्तिं च गानं च पितरं तथा ।
ऋणं चापि प्रवास च व्योमस्थानानिरीक्षयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 11, पृष्ठ संख्या 81।

19 नानावस्तुभवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च ।
आर्य सशुसमृद्धिं च भवस्थानान्निरीक्षयेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 12, पृष्ठ संख्या 81।

20 व्ययं च वैरिवृत्तान्तं रिष्कमन्त्यादिकं तथा ।
व्ययाच्चौव हि जानीयादिति सर्वत्र बुद्धिमान्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय 12, श्लोक संख्या 13, पृष्ठ संख्या 81।

21 तन्वादिभावेषु शुभोदयेषु तद्भावनाथोपगतेक्षितेषु ।।
तदुक्तभावस्य साम्युद्भिरुका न पापखेटेक्षितसंयुतेषु ।।
यद्भावनाथो रिपु–रिष्फ–रन्ध्र दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु ।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात्।। जातक पारिजात, पृ0 सं0– 73।

22 तनुपः केन्द्रकोणस्थोऽनिशं दद्यात्तनौ सुखम् ।
स एव त्रिकगः पापसंयुतस्तनुसौख्यहृत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावफलाध्याय 13, श्लोक सं0 1, पृ0 सं0 82।

23 तनुपोऽस्तमितो नीच–शत्रुभस्थोऽतिरोगकृत् ।।
केन्द्र–त्रिकोणगाः सौम्याः सर्वरोगापहारकाः।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावफलाध्याय 13, श्लोक सं0 2, पृ0 सं0 82।

24 लग्ने शशिनि वा पापग्रहैर्युक्तेऽथवेक्षिते ।
सौम्यदृग्रहिते सौख्यं तनौ जातस्य नो भवेत्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावफलाध्याय 13, श्लोक सं0 3, पृ0 सं0 83।

25 लग्ने शुभे तु सुभगस्तत्र पापे तु दुर्भगः ।
शुभग्रहैयुते दृष्टे तनौ सौख्यं सुनिश्चितम्।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावफलाध्याय 13, श्लोक सं0 4, पृ0 सं0 82।

26 अजे वृषेऽथवा सिंहे लग्ने सारे ससूर्यजे ।
नालेन वेष्टितो जातो राश्यंशसदृशे तनौ।।
– बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावफलाध्याय 13, श्लोक सं0 8, पृ0 सं0 82।

से पर पूर्व द्वितीय–द्वादश (२ । १२) आँख, तृतीयैकादश (३।११) कान, चतुर्थ–दशम (४।१०) नाक, पञ्चम नवम (५ । ६) कपोल, षष्ठ–अष्टम (६ । ८) दाढी, और सप्तम मुख थे क्रमशः दक्षिण–वाम अङ्ग समझना चाहिये । इसी तरह द्वितीय द्रेष्काण गत लग्न हो तो लग्न कण्ठ, (२ । १२) स्कन्धद्वय, (३ । ११) भुजय, (४ । १०) पार्श्वद्वय, (५□८) हृदय, (६ । ८) पेट, और सप्तम नाभि, तृतीय द्रेष्काण गत होने पर लान वस्ति, (२ । १२) लिङ्ग और गुदा, (३ । ११) अण्डकोश (४ । १०) जंघा, (५६) ठेहुना, ६ । ८ घुटने का अधो भाग, और सप्तम पैर । ये अवयव लग्न के आगे और पीछे समझे जिस अंग में पाप ग्रह हो उसमें व्रण कहना चाहिये । वुध युक्त पाप यदि रहें तो निश्चित रूप से व्रण कहें । वहीं शुभ ग्रह के संयोग या दृष्टि होने पर चिह्न मान्न का निर्देश करें। लग्न या चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि या संयोग हो, शुभ ग्रहों की दृष्टि नहीं रहे तो जातक शारीरिक सुख से वञ्चित होता है । लग्न में शुभ ग्रह रहे तो वह देखने में सुन्दर, पापग्रह रहें तो कुरूप होता है। लग्न पर शुभ ग्रन की युति या दृष्टि होने पर निःसन्देह उसे शारीरिक सुख होता है।

द्वितीय भाव : धन भाव

धनेश धन स्थान अथवा १ । ४ । ७ । १० । ६ । ५ स्थानों में कहीं भी रहें तो जातक निःसन्देही धनधान्य सम्पन्न होता है। वही (धनेश) (६ । ८। १२ = त्रिक) में रहें तो धनक्षय होता है । इन स्थानगत शुभग्रह धनप्रद होते हैं और वहीं यदि पापग्रह हों तो धनक्षय कहें।[27] धनेश गुरु यदि धन स्थान गत हों या मंगल के साथ हो तो जातक धनवान होता है । धनेश लाभ स्थान में, या लाभेश धन स्थान में हों या वे दोनों केन्द्र या त्रिकोण में हो तो मनुष्य धनसम्पन्न होता है। धनेश केन्द्रगत हों, लाभेश उससे नवम या पञ्चम में हों, गुरु शुक्र से युक्त या दृष्ट हों तो पूर्ण धन–प्राप्ति कहनी चाहिए।[28]

धनेश एवं लाभेश षष्ठभाव गत हों, तथा धन एवं लाभ भाव पापग्रहों से युत या दृष्ट हो तो जातक दरिद्र होता है। धनेश एवं लाभेश अस्तङ्गत होकर पापग्रहों से युक्त हों, तो जातक जन्म से ही दरिद्र होकर भिक्षान्न पर ही आश्रित रहता है । धनेश तथा लाभेश त्रिक (६ । ८ । १२) स्थान गत हो, मङ्गल एकादश में, तथा राहु धन स्थान में हो तो राजदण्ड से उसकी सम्पदा का विनाश कहना चाहिए।

नेत्रेश (धनेश) सबल हो तो जातक सुन्दर नेत्र वाला होता है वही (नेत्रेश) ६।८। १२ स्थानों में स्थित हो तो नेत्र में रोग कहना चाहिये । धनेश पापग्रह युक्त हों और धन स्थान भी पापाक्रान्त हो तो जातक असत्यवादी, पिशुन तथा वातरोग अस्त होता है ।[29] दृधनभाव फलाध्याय में धन एवं लाभ भाव के सहारे, धन–सम्पत्ति तथा नेत्र रोग का विचार किया गया गया है। किसी भी भाव का शुभाशुभ फल भावेश के स्थान, भाव पर शुभाशुभ के योग या दृष्टि, पर ही निर्भर करता है । तदनुसार धन भाव पर प्रकाश डालते समय धन भाव पर शुभ या पाप ग्रहों में से किसकी दृष्टि है, यह देखना स्वाभाविक ही है। इस तरह धनेश यदि केन्द्र या त्रिकोण, स्वभवन, स्वोच्च (जहाँ रहने से वे बली होते हैं) में हों तो धनभाव की पुष्टि, त्रिक (६ । ८ । १२) में रहने पर धन का क्षय कहना उचित ही है। धन भाव पर गुरु, शुक्र या अन्य शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा संयोग से भी धन–सम्पत्ति कहना स्वाभाविक ही है । धनेश के पारावतांशादि शुभ वर्ग गत होने पर भी सर्व सम्पत्ति का होना युक्तियुक्त ही है। धनेश त्रिकस्थ हो, धन स्थान भी पाप ग्रह युक्त या दृष्ट हों तो निर्धन कहना भी स्वाभाविक है क्योंकि त्रिक (६। ८ । १२) स्थान में जो भी ग्रह पड़े तो दुर्बल हो जाते हैं। द्य नेत्र का भी विचार धन भाव से किया जाता है। अतः धनेश (नेत्रेश) सबल हों तो शोभन नेत्र और दुर्बल (त्रिक गत) हों तो नेत्र रोग, धनेश पापयुक्त, तथा धन स्थान भी पा पाक्रान्त होवे तो असत्यवादी आदि असरफल भी नियमानुसार ही है।

लाभ स्थान गत गुरु, धन भावगत शुक्र, धनेश शुभग्रह संयुक्त, और द्वादश स्थान भी शुभग्रह युक्त हो तो जातक का धर्ममूलक धनव्यय कहना चाहिए । धनेश अपने उच्च या स्वभवन गत हों, और गुरु की उनपर दृष्टि होवे तो जातक सर्वजन प्रिय विख्यात व्यक्ति होता है। शुभग्रह युक्त धनेश पारावत आदि शुभवर्ग में स्थित हो, तो जातक के घर में स्वतः अनेकविध सम्पत्ति होती है।

तृतीय भाव : सहज भाव

सहजभाव ! शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो मनुष्य सहजसौख्य युक्त होता है । मङ्गल सहित सहजेश यदि सहज भाव को पूर्ण दृष्टि से देखें, या सहज भाव गत हो, तो भ्रातृसुख का निर्देश करना चाहिये । वे दोनों (सहजेश, मङ्गल) पाप ग्रहों से युक्त या पापग्रह के राशि में गत होने पर सहज के शीघ्र घातक होते हैं। सहजेश नीग्रह (चन्द्र–शुक्र) हो, अथवा स्त्रीग्रह सहज भावगत हो तो बहन का सुख, पुरुषराशि या पुरुषग्रह (सूर्य भीम गुरु) हो तो भ्रातृसुख, मिश्र (स्त्री पुरुषग्रह) दोनों हो तो दोनों का सुख कहना चाहिये।[30] सहजेश तथा मंगल अष्टम भावगत होकर पापग्रहों से युत दृष्ट हों तो सहोदरों के नाशक होते हैं। सहजेश अथवा भ्रातृकारक ग्रह केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, मित्रगृह या स्ववर्गग हो तो भ्रातृसुख कहना चाहिए। सहजेश या भ्रातृकारक ग्रह शुभग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों, सहज भाव भी सबल हो तो सहज (भाई–वहिन) की वृद्धि कहनी चाहिये।

सहज भाव बुध संयुक्त हो, सहजेश के साथ चन्द्रमा रहे, और भ्रातृकारक ग्रह शनि के साथ पड़े तो पहले एक बहन, पीछे एक भाई, और अपने से तृतीय मर जाता है।[31] भ्रातृकारक राहु के साथ हो, सहजेश नीचगत हो तो अपने से बाद के सहोदरों

---

[27] धनाधिपो धने केन्द्र त्रिकोणे वा यदा स्थितः ।
धनधान्ययुतो जातो जायते नात्र संशयः।।

[28] धनेशे केन्द्रराशिस्थे लाभेशे तत्त्रिकोणगे।
गुरु–शुक्रयुते दृष्टे धनलाभमुदीरयेत्।।

[29] धनेशे पापसंयुक्ते धने पापसमन्विते ।
असत्यवादी पिशुनो भवेद् वातरुजार्दितः।।

[30] भ्रातृपे कारके वापि सौम्यैर्युक्तेऽथवेक्षिते ।
भावे वा बलसंयुक्ते भ्रातृवृद्धिः प्रजायते।।

[31] भ्रातृभे बुधसंयुक्ते तदीशे चन्द्रसंयुते ।

का अभाव किन्तु अपने से बड़े तीन सोदर कहना चाहिये । तृतीयेश केन्द्रस्थ हो, भ्रातृकारक ग्रह उससे केन्द्र में गुरु के साथ उच्चस्थ हो तो १२ सहोदर होवे ।। उनमें अपने से दो ज्येष्ठ, तथा तीसरा सातवाँ, नवाँ, बारहवाँ मृत हो जाँय शेष है, दीर्घजीवी होते हैं। मंगल आयेशयुक्त हो या गुरु–समन्वित हो, और सहज स्थानगत चन्द्रमा रहे तो चतुर्थ (सुख) सोदरों की संख्या सात होती है। सहज स्थान स्थित चन्द्रमा पर पुंग्रह मात्र की दृष्टि होवे, तो सहोदर भाई, और शुक्र से युत इष्ट हो तो बहन कहें । सहज स्थान स्थित सूर्य अग्रज का, शनि पृष्ठज का, मङ्गल अग्रज, पृष्ठज, दोनों का नाशक होते हैं

चतुर्थ भाव : सुख भाव

चतुर्थ स्थान में सुखेश या लग्नेश हो, और वह स्थान शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो पूर्ण रूप से गेह–सौख्य होता है । सुखेश अपने गृह, स्वनवांश, अथवा अपने उच्चगत हो तो जातक को घर, जमीन, वाहन, माता तथा गीत–वाद्यादि का सुख कहना चाहिए।[32] केन्द्र या त्रिकोण में सुखेश एवं राज्येश की सहावस्थिति हो तो जातक राजयोग्य प्रासाद में निवास करता है। शुभग्रह चतुर्थेश शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हों, और बुध लग्नगत हो तो जातक बन्धु पूज्य होवे।

चतुर्थ भाव शुभग्रहयुक्त हो, चतुर्थेश अपने उच्च में रहे, और मातृकारक ग्रह सबल हो तो जातक की माता दीर्घायुष्य वाली होती है[33]। सुखेश तथा शुक्र केन्द्रस्थ हो, बुध अपने उच्च में रहे तो वाहन–सुख कहना चाहिए । चतुर्थ स्थान में शनि तथा सूर्य रहें चन्द्रमा भाग्यभाव गत हो, मंगल एकादश स्थान गत हो तो जातक को बैल, भैस आदि पशुओं का लाभ कहें । सुख स्थान चर राशि का हो, सुखेश मंगल के साथ छठे या बारहवें स्थान में हो तो जातक मूक (गंगा) होता है । लग्नेश शुभग्रह हो, सुखेश नीच राशिगत पड़ जाय, चतुर्थ भाव कारक १२ वें में हो, सुखेश लाभस्थान में रहे तो बारहवें वर्ष में वाहन–सुख कहना चाहिए । रवियुक्त वाहन स्थान हो, चतुर्थेश अपने उच्च में शुक्र–संयुक्त हो तो बत्तिसवें वर्ष यान की प्राप्ति होवे । सुखेश अपने उच्चशि में कर्मेश से संयुक्त हो तो ४२ वें वर्ष में वाहन–सुख होवे । लाभेश चतुर्थ स्थान में और चतुर्थेश लाभ स्थान में हों, तो १२ वें वर्ष में मनुष्य यान प्राप्त करे । इस प्रकार भाव की सम्पुष्टि रहने पर उस भाव से विचारणीय सभी पदार्थों की प्राप्ति और भाव भी दुर्बलता में उनका अभाव कहना चाहिये।

पंचम भाव : सुत भाव

लग्नेश तथा पञ्चमेश यदि पञ्चम भाव में या केन्द्र (१।४।७।१०) तथा नवस में हो तो पूर्ण रूप से पुत्रजन्य सुख होवे । वही पञ्चमेश त्रिक (६।८।१२) में रहें तो पुन्नाभाव कहना चाहिए। पञ्चमेश अस्तंगत, पापग्रहाक्रान्त या दुर्बल हो तो पुत्रोत्पत्ति नहीं होवे यदि कदाचित् हो भी जाय तो उस की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती । पञ्चमेश षष्ठस्थान में हो और लग्नेश मंगल से युक्त हो तो प्रथम सन्तान की मृत्यु और उसकी पत्नी काकवन्ध्या हो जाय । पञ्चमेश नीचस्थ होकर षष्ठादित्रिक स्थानों में रहे और पञ्चमभाव में केतु–बुध हो तो भी पत्नी काकवन्ध्या होती है।[34] नीचस्थ पञ्चमेश पञ्चमभाव को नहीं देखे और शनि–बुध पञ्चम स्थानस्थ हो तो भी काकवन्ध्या होती है । भाग्येश लग्नस्थ हो, पञ्चमेश नीचस्थ रहे और पञ्चम स्थान में केतु–बुध पड़े तो प्रयास (धर्मानुष्ठादि) से पुत्र होवे । । पञ्चमेश षष्ठ, अष्टम या व्ययस्थ हो, अथवा नीच या शत्रुराशिगत होकर पञ्चम में पड़े तो भी प्रयत्न से पुन्न होवे।

मिथुन, कन्या, मकर, या कुम्भ पञ्चम भाव पर शनि और गुलिक का संयोग या इष्टि पड़े तो दत्तक पुत्र कहें । एक राशिस्थ रवि–चन्द्र एक ही नवांशगत हों तो जातक तीन माताओं या दो पिता से पोषित होवे । पञ्चम भाव में छेग्रह हो, पञ्चमेश १२ वें स्थान में रहे, लग्नेश तथा चन्द्रमा सबल हो तो भी दत्तक पुत्र होवे ।। द्य पञ्चम भवन पर सबल बुध, गुरु, शुक्र का योग या दृष्टि पड़े और पञ्चमेश भी प्रबल रहे तो अनेक पुत्रों की उत्पत्ति कहनी चाहिये।

पञ्चमेश चर राशिस्थ हो, चन्द्रमा राहु युक्त हो, और शनि पञ्चम स्थानगत हो तो जातक अपने पिता से उत्पन्न नहीं होता है। चन्द्रमा से अष्टमस्थ गुरु और लग्न से अष्टमस्थ चन्द्रमा पड़े, और वे (चन्द्र–गुरु) पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो भी । जातक जारज होता है। स्वोच्चस्थ पञ्चमेश लग्न से २, ३, ६, ५, स्थानों में प्राप्त हों, और उन पर गुरु पञ्चम (सुत) भावफलाध्यायः की दृष्टि या संयोग रहे तो वह पुन्नसौख्यवान् होता है। तीन या चार पापों से युक्त पञ्चमभाव शुभग्रह से सर्वथा रहित रहे, साथ ही पञ्चमदेश नीच राशिस्थ हो तो जातक नीचकर्मरत होता है।

पंचमभाव में गुरु हो तथा पञ्चमेश शुक्र साथ में हो तो ३२ या ३३ वें वर्ष में पुत्रलाभ होता है।[35] लग्न से नवें स्थान में गुरु हो और गुरु से नवें स्थान में शुक्र हो अथवा लग्नेश शुक्र से मिला हो तो ४० वें वर्ष में पुत्रलाभ होता है। पुत्रभाव में राहु हो तथा पञ्चमेश पापग्रह से युक्त हो तथा गुरु अपने नीच में हो तो ३२ वें वर्ष में पुत्रं का निधन हो जाता है। शुक्र एवं लग्न से पंचम भाव में यदि पापग्रह हो तो ३३ या ३६ बर्ष में पुत्र का निधन हो जाता है। लग्न में गुलिक हो तथा लग्नेश अपने नीच में हो तो ५६ वें वर्ष में पुत्र का निधनजन्य शोक होता है

कारके मन्दसंयुक्ते भगिन्येकाग्रतो भवेत्।।

[32] बन्धुभावगते बन्धुनाथे वा तत्र लग्नपे ।
सौम्यखेटेक्षितयुते पूर्णगेहसुखं भवेत।।

[33] मातुः स्थाने शुभयुते तदीशे स्वोचराशिगे।
कारके बलसंयुक्ते भातृदीर्घायु रादिशेत्।।

[34] षष्ठस्थाने सुताधीशे लग्नेशे भौमसंयुते ।
म्रियते प्रथमापत्य काकवन्ध्या सधर्मिणी।।

[35] पुत्रस्थानाधिपे स्वोच्चे लग्नाच्चेद्वित्रिकोणगे ।
गुरुणा संयुते दृष्टे पुत्रभाग्यमुपैति सः।।

चतुर्थ तथा षष्ठ भाव पापयुक्त हो, परमोच्चगत पञ्चमेश लग्नेश के साथ रहे, और पुत्रकारक ग्रह भी शुभग्रहयुक्त हो तो दश पुत्र होवे ।[36] गुरु परमोच्चस्थ हों, धनेश एवं राहु का संयोग रहे, भाग्येश भाग्यस्थानगत होवे, तो नव संख्यक पुत्र कहना चाहिये । गुरु पञ्चस या नवम भावस्थ हो, पञ्चमेश प्रबल रहे, तथा धनेश कमें स्थान गत हो तो आठ पुत्र कहैं । पञ्चम भाव से पञ्चम में शनि हो, पञ्चमेश पञ्चम भाव में पड़े तो सात पुत्र होवें, जिनमें दो गर्भ में यमल (युग्म पुत्र) होते हैं । वित्तेश तथा पञ्चमेश पञ्चम भाव में हो तो छे पुत्र होवे जिनमें तीन का मरण हो जाय । शनि से पाँचवें गुरु या गुरु से पञ्चम शनि हो, और पञ्चम भवन पापयुक्त हो तो एक पुत्र कहना चाहिए ।

पञ्चम भाव पापग्रह युक्त हो, और गुरु से पञ्चम में शनि रहे तो जातक को तीन पत्नी होवे जिनमें पहले के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों में पुत्र लाभ होता है । पन्चम भवन पापयुक्त हो, गुरु से पञ्चमस्थ शनि पड़े, लग्नेश धन भावगत हो, और पंचमेश भौम युक्त होवे तो मनुष्य मृतात्मज होता है अर्थात् अनेक पुत्र होने पर भी पुत्र जीवित नहीं रहता, पर खुद दीर्घायु होता है □

विमर्श–"पुत्रादेव महीपपुत्रपितृधीपुण्यानि सञ्चिन्तयेत" के अनुसार पञ्चम भाव से देवता, राजा, पुत्र, पिता, बुद्धि, पुण्य इन सभी का विचार करना चाहिए । द्य किसी भाव के सम्बन्ध में सामान्यतः ये बातें विचारणीय होती हैं। भावेश उत्तम स्थान (उच्च, स्वभवन, मूलत्रिकोण, मित्रक्षेत्र, केन्द्र १० त्रिकोण (६५) में हो तो भाव प्रवल, और वही (भावेश) त्रिक (६८।१२) नीचराशि, पञ्चम (सुत) भावफलाध्यायः शत्रुक्षेत्र में हों या अस्तङ्गत रहे तो भाव दुर्बल हो जाता है। भाव शुभग्रह से युक्त या दृष्ट होते हुए पापग्रहों से अस्पृष्ट हो तो भाव सवल अन्यथा दुर्बल होता है। भावेश अपने भाव में हो या उच्चादि उपर्युक्त स्थानों में रहकर अपने स्थान को देखता हो, शुभग्रह का भाव के साथ संयोग या दृष्टि हो तो भाब पूर्ण प्रबल होता है। इन्हीं मूल बातों को ध्यान में रखकर महर्षि पराशर ने भी पञ्चम भाव का फलादेश किया है । मानव–जीवन में पञ्चम भाव का विद्या, पुत्र से सम्बन्ध होने के कारण महत्वपूर्ण स्थान है । अतः अन्य जातक ग्रन्थों की सहायता से इन दोनों पर विशेष प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है । विद्या के विचार में पञ्चम, द्वितीय भाव तथा गुरु का प्राक्रम देखना चाहिए । पञ्चमेश बुध गुरु के साथ त्रिक (६।८।१२) में रहें तो जातक विद्या विहीन होता है। वही (पञ्चमेश) केन्द्र त्रिकोण आदि अच्छे स्थानों में हो तो उसे विद्यायुक्त कहना चाहिए ।

बुध, गुरु, पश्चमेश सूर्य के साथ असंगत हो तो मनुष्य मन्दबुद्धि होता है। यदि वे (बुध, गुरु, पञ्चमेश) अपने–अपने भवन में हो तो बुद्धि में अल्पता नहीं। कहनी चाहिए। पञ्चमेश या गुरु त्रिक में हो तो जातक गूंगा होता है । एकस्थान स्थित गुरु, राहु, शनि, बुध, शुक्र से देखे जाय तो शूद्र भी ब्राह्मण तुल्य प्रतिभा वाला और ब्राह्मण समस्त विद्या को प्राप्त करने वाला होता है । गुरु एवं द्वितीयेश वली हो और उन पर सूर्य, शुक्र की दृष्टि हो तो । जातक व्याकरण शास्त्रज्ञ होता है ।

गुरु केन्द्रस्थ हो, द्वितीयेश बुध हों, या शुक्र स्वोचस्वगृही हो तो जातक गणितशास्त्र प्रेमी होता है। द्वितीय भावगत भीम शुभग्रह के साथ रहें और बुध की उनपर हुष्टि हो अथवा बुध केन्द्रगत हो तो भी जातक गणितज्ञ होता है। सचान्द्र चन्द्र केन्द्रस्थ हों अथवा तृतयेश बुध के साथ केन्द्र में हों ती भी जातक गणितज्ञ होता है। यदि लग्नेश द्वितीय स्थान में हो और शुक्र द्वादशस्थान गत हों अथवा उच्चस्थ शुभग्रह केन्द्र में हों या लग्नेश पारावतांश गत हो और दोनों स्थिति में शुक्र द्वादश भावगत हों तो जातक वेदान्तशास्त्रज्ञ होता है । यदि द्वितीयेश सूर्य अथवा मंगल हों और उस पर गुरु या शुक्र की इष्टि हो तो जातक शास्त्रज्ञ गोता है ।। गुरुयुक्त द्वितीयेश द्वितीय स्थानस्थ हों और इस पर पापग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक वारसी होता है । बुध, गुरु द्वितीयस्थ हों और उस पर पापग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक सुव्याख्याता होता है ।

द्वितीय स्थान शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक मिष्टभाषी एवं सत्यवक्ता होता है और वही भाव यदि पापग्रह से युत दृष्ट हो तो जातक दुर्मुख होता है । धनस्थान में धनराशि का चन्द्रमा हो (ऐसा वृश्चिक लग्न में ही सम्भव है) तो जातक व्याख्याता एवं स्पष्टवादी होता है ।। बुध केन्द्रस्थ हो और द्वितीयेश वली हो अथवा द्वितीयस्थ शुक्र और तृतीयस्थ अन्य शुभग्रह हों अथवा द्वितीय स्थान में उच्च या शुक्र हो और द्वितीयेश वली हों तो जातक ज्योतिषशास्त्रज्ञ होता है ।।
द्वितीयेश वली, बुध केन्द्रस्थ और शुक्र पञ्चमस्थ हो तो भी जातक ज्योतिषशास्त्र का अभिज्ञ होता है ।

सन्तान के लिए विचार

सन्तति का विचार लग्न, चन्द्रमा, सप्तम भाव एवं गुरु से करना चाहिए । द्य गुरु से पञ्चम स्थान पापाक्रान्त हो, स्वयं भी गुरु पापयुक्त हों तो उस व्यक्ति की सन्तति जीवित नहीं रहती है। इसी तरह लग्न, चन्द्रमा एवं सप्तम भाव से भी देखना अर्थात् इनसे पञ्चम में पापग्रह हों और ये स्वयं भी पापयुक्त हों इन चारों में से एक योग होता हो तो विलम्बसे सन्तानोत्पत्ति होवे । दो योगों के रहने से सन्तान होकर भी मर जाय । तीन या चारों योग उपस्थित होने पर सन्तानोत्पत्ति होती ही नहीं है। ऐसी स्थिति में हरिवंशश्रवण, कन्यादान आदि पुण्यकार्य करना चाहिए । द्य गुरु से पञ्चमेश त्रिक (६।८।१२) में हो, लग्नेश त्रिकोणेश लग्न से त्रिक में हों तो पुत्र का सम्भव नहीं होता है। वे लग्नेश एवं त्रिकोणेश गुरु, बुध, शुक्र से युक्त हो तो विलम्बसे पुत्रोत्पत्ति होती है। द्य कर्कराशिस्थ चन्द्रमा पञ्चम भाव में हो तो उस मनुष्य को अल्प पुत्र एवं अधिक कन्याएँ होती हैं। कुम्भ का शनि पञ्चम भाव में हो तो पाँच पुत्र और मकर का शनि पञ्चम भाव में पड़े तो तीन कन्याएँ अवश्य होती हैं।

बुध, शुक्र, चन्द्रमा, पञ्चम भावगत होने से कन्याप्रद होते हैं। केवल गुरु पञ्चम भावस्थ हो तो पाँच पुत्र होते हैं । द्य तृतीय भावस्थ बुध में दो पुत्र और तीन कन्याएँ, गुरु में पांच पुत्र, सचन्द्र शनि में एक पुत्र, शुक्र में तीन पुत्र दो कन्याएँ, कुज में पुन्नाभाव, एवं सचन्द्र राहु में पुत्रसौख्याभाव, होता है।
पापग्रह था गुरु चतुर्थ भावस्थ हो और अष्टम या पञ्चम में चन्द्रमा हो तो ३० वर्ष पर्यन्त सन्तान होने में विलभ होता है। द्य पञ्चमेश परमोध में पुंग्रह नवांशस्थ होते हुए सुत–भावगत हो और वह पापग्रह से युतेक्षित नहीं हो तो अनेक पुत्र होते हैं।
वही पञ्चमेश निर्बल पापयुक्त या अस्तंगत हो तो पुत्र नहीं होता है । होता भी है तो शीघ्र मर जाता है ।
पञ्चम भावस्थ शनि, राहु, या केतु गर्भनाशकारक होता है । पञ्चमस्थ रवि एवं मंगल सन्तति–क्षयकारक होता है । । बुध, गुरु, शुक्र अपनी राशि या उच्च का होकर यदि १।५।११।१०।६।७ भावों में हो तो राजा के समान बहुत धनी पुत्र होता है ।।
(१) यदि सूर्य लग्नस्थ हों और शनि सप्तम भाव में रहें, (२) वृहस्पति से अदृष्ट सूर्य, शनि, सप्तम भावगत हों और चन्द्रमा दशमस्थ हो, (३) सूर्यशनियुक्त षष्ठेश पछस्थानस्थ हों और बुध से दृष्ट हो, (४) यदि शनि मंगल षष्ठ और चतुर्थ स्थान में हों,

---

[36] चतुर्थे पापसंयुक्ते षष्ठेऽपि च तथाविधे ।
सुतेशे परमोच्चस्थे लग्नेशेन समन्विते।।

तो प्रत्येक स्थिति में जातक निःसन्तान होता है । सन्तान संख्याद्य (१) पञ्चमेश पुंग्रह (सू. मं. गु) के नवांश में हो तो नवांश संख्या तुल्य पुन्न, स्त्री ग्रह (चं. शु.) के नवांश में हो तो नवांश संख्या तुल्य कन्याएँ होती हैं। द्य (२) पञ्चम भाव पर जितने पुंग्रह की दृष्टि हो उतने पुत्र और जितने स्त्रीग्रहों की दृष्टि हो उतनी कन्याएँ कहनी चाहिए। द्य (३) पञ्चम भाव के नवांश पर जितने पाप ग्रहों की दृष्टि हो और वह शुभ ग्रहों के संयोग या दृष्टि से वञ्चित रहे तो पाप ग्रह संख्या तुल्य गर्भों का नाश कहना चाहिए। द्य (४) पञ्चमेश या नवमेश सप्तम स्थान में हो या युग्म राशिगत हो और वह चन्द्र या शुक्र से युत दृष्ट हो तो कन्याबाहुल्य कहना चाहिये ।। (५) गुरु, चन्द्र, सूर्य, इन ग्रहों के फुटों को जोड़ कर जो राश्यादि हो उसके नवांश संख्या तुल्य सन्तान होती है।

(६) लग्न से पञ्चमाधिप जितने नवांश में रहे वही सन्तान की संख्या कहनी चाहिये ।। (७) पञ्चमेश, नवमेश तथा चतुर्थेश के स्फुट के जोड़ने पर जो राश्यादि हो, उस की नवांश–संख्या ही सन्तान की होती है।

(८) पञ्चम भाव की राश्यादि में जितनी नवांश संख्या बीती हो उतनी संतान की संख्या होती हैं । यदि पञ्चम पर शुभदृष्टि रहे तो सन्ततिसंख्या द्विगुणित हो जाती है । व्यतीत नवांश में पापग्रह का जितना नवांश हो, उतनी सन्तान नष्ट हो जाती है। पापग्रह की पञ्चम पर दृष्टि रहने से नाश होने वाली सन्तान की संख्या द्विगुण हो। जाती है ।

(९) पञ्चमेश का नवांशाधिपति यदि स्व नवांश का हो तो उस जातक को एकमात्र पुत्र होता है ।।

षष्ठ भाव : रोग भाव

पाप षष्ठेश अपने घर (षष्ठस्थान) लग्न या अष्टम स्थान में हो तो जातक के शरीर के षष्ठभावाश्रित अङ्ग में व्रणकारक होता है। इसी तरह पित्रादि–भावेश षष्ठेश से युक्त हो और पछाष्टम गत हो तो पित्रादिकों को व्रणादि कहना । यदि षष्ठेश रवि उक्त स्थान में हो तो शिरोव्रण, चन्द्रमा हो तो मुखव्रण, मंगल हो तो कण्ठव्रण, बुध हो तो नाभिगत व्रण, गुरु हो तो नासिकाव्रण, शुक्र हो तो नेत्रव्रण, शनि हो तो पादव्रण और राहु केतु हो तो उदरव्रण , कहना चाहिये । लग्नेश कुजक्षेत्र (मेष–वृश्चिक) या बुधक्षेत्र (कन्यामिथुन) में होकर बुध–दृष्ट हो तो मुखव्रण होता है। लग्नेश बुध–मंगल, चन्द्रमा, राहु शनि के साथ हो तो कुष्ठरोग का निर्देश करें।[37] लग्न में राहु के साथ चन्द्रमा हो, और लग्नेश वहाँ नहीं हो, तो श्वेत कुष्ठ कहें, शनि के साथ कृष्ण कुष्ठ, और मंगल के साथ रहने पर रक्त कुछ कहना चाहिये ।[38]

रवियुक्त षष्ठाष्टमेश लग्न में हो तो उवरगण्ड, मंगल के साथ होने पर ग्रन्थिबात या शस्त्रकृत व्रण, बुध के साथ हो तो पैत्तिक रोग, गुरु के साथ रहने पर रोगाभाव, शुक्र के साथ होने पर स्त्री द्वारा रोगोत्पत्ति, शनियुक्त होने पर वायु–प्रकोप, राहु के साथ होने पर वे (षष्ठेश, अष्टमेश) लग्न में रहें तो नाभि में व्रण, केतु के साथ में गृहभीति कहें । यदि चन्द्र मा से युक्त हो तो जलजगण्ड या कफश्लेष्मा का प्रकोप कहे। इसी तरह पित्रादि (दशम आदि) भावों के वश पिता आदियों के भी रोग का विचार करना चाहिये

षष्ठस्थानगत पाप हो, षष्ठेश भी पापयुक्त हो, और शनि–राहु का संयोग हो तो । सदैव जातक रोगाकुल होता है । षष्ठस्थान में मंगल हो, षष्ठेश अष्टम स्थान में हो, तो छठे या बारहवें वर्ष में मनुष्य ज्वररोगग्रस्त होवे । गुरु षष्ठस्थानगत रूहो, गुरु की राशि में चन्द्रमा हो, तो ०२ या १६ वें वर्ष में कुष्ठरोग कहना चाहिए । राहु षष्ठ स्थान में हो, गुलिक केन्द्र गत हो, लग्नेश अष्टमस्थानस्थ हो तो २६ वे वर्ष में क्षयरोग (यक्ष्मा) कहना। व्ययेश षष्ठस्थान में, और षष्ठेश व्यय स्थान में हों, तो २६ या ३० वर्ष में गुल्मरोग होने का आदेश करें । षष्ठ स्थान में शनियुक्त चन्द्र हो तो ५५५ वर्ष में रक्त कुछ कहें। लग्नेश लग्न में, शनि षष्ठ स्थान में हो तो ५६ वें वर्ष में वातरोग की पीड़ा होती है।श अष्टमेश पृष्ठस्थान में, और व्ययेश लग्न में हो, तथा षष्ठेश और चन्द्रमा का संयोग होवे तो अष्टम वर्ष में हरिण से भय कहना चाहिये ।

आयुर्दाय शब्द का आशय

संस्कृत शब्द दाय का अर्थ दान, दहेज, भेंट या उत्तराधिकार में आने वाला हिस्सा होता है।[39] इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सभी ग्रहों द्वारा घट–बढ़, नापतोल, हानि–वृद्धि करने के उपरान्त जो हम मनुष्यों को आयु दी जाती है, वही आयुर्दाय कहलाता है। इसको हम इस प्रकार से समझ सकते हैं कि जैसे सरकार किसी योजना के लिए एक खास तय मात्रा में बजट स्वीकृत करती है, लेकिन यह कोई जरूरी नहीं होता है कि वह सारी राशि उसी काम में खर्च हो जाये। जैसे उसमें कम या ज्यादा हो सकता है वैसे ही मानव अपने कर्मों के द्वारा इसमें भी उतार–चढ़ाव ला सकता है।

आयु ज्ञान की आवश्यकता

आयुर्मूलं जन्मिनां जीवनं च। ह्याजीवानां निर्जराणां सुधेव।।

एवं प्राहुः पूर्वमाचार्यवर्या ।स्तस्मादायुर्दायमेनं प्रवक्ष्ये।।[40]

प्राचीन आचार्यों का ऐसा मानना है कि सभी मनुष्यों का जीवन उनकी आयु की विस्तार सीमा ही है। जिस प्रकार देवताओं के लिए अमृत ही देवत्व का आधार है। अर्थात् छोटे से छोटे देवता से लेकर सुर गुरु (बृहस्पति) पर्यन्त अमृत से ही उनका अमरत्व है, उसी प्रकार मनुष्यों का मनुष्यत्व जीवन व मरण में ही निहित है।

---

[37] कुष्ठ योगलग्नाधिपौ कुजबुधौ चन्द्रेण सहितौ यदि ।
राहुणा शनिना साधं, कुष्ठं तत्र विनिर्दिशेत्।।

[38] लग्नाधिपं विना लग्ने स्थितश्चेत्तमसा शशी ।
श्वेतकुष्ठं तदा कृष्णकुष्ठं च शनिना सह।।

39 ज्योतिष गहरे पानी पैठ, डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र, अ0 1, पृ0 सं0 9।

40 जातकालंकार, डॉ0 सुरेश चन्द्र मिश्र, आयुर्दायाध्याय, अ0–5, श्लोक सं0–1, पृ0 सं0 – 115।

यदि जन्म लग्न का स्वामी अति बलवान् होकर, शुभ ग्रहों से दृष्ट हो और वे दृष्टिकारक शुभ ग्रह केन्द्र स्थानों में हों तो मनुष्य को बहुत लम्बी आयु मिलती है।[41] साथ ही साथ ऐसा व्यक्ति अनेक गुणों से सम्पन्न व श्रीमान् समाजश्रेष्ठ होता है। यदि जन्म समय शुभ ग्रह केन्द्र स्थानों में स्थित हों और चन्द्रमा अपनी उच्च स्थिति में वृष राशि में हो, साथ ही लग्नेश बलवान् हो अथवा लग्ने लग्न में हो तो मनुष्य की आयु 60 वर्षों की होती है। सामान्यतः आयु के तीन खण्ड ज्योतिष सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। टीई मध्य व अल्प आयु योगों में क्रमशः पहले 96 वर्ष, 64 वर्ष व 32 वर्ष । सीमा मानी जाती थी। बाद में फलदीपिका प्रभृति ग्रन्थों में सामान्यतः 90 व 90 वर्षों को माना जाने लगा है। लेकिन आज–कल व्यवहार में देखा जाता है कि प्राचीन काल की सुदीर्घायु या परमायु (120 वर्ष) तो स्वप्न की वस्त हो गई है। फिर भी 'पश्येम शरदः शतम्श के आधार पर सौ का अंक छुने वाले लोग भी आज हजारों में से विरले ही होते हैं। अतः आजकल अल्पायु 30 वर्ष मध्यायु 50 वर्ष व दीर्घायु 70 वर्ष भी मान लें तो हानि नहीं होगी। दीर्घमध्याल्प शब्द वास्तव में संख्यात्मक वर्षों को रेखांकित न कर सामान्यतः स्वीकृत अवधि 7 ही संकेतित करते हैं। लम्बी उम्र तो वही है जिसे जनसमुदाय लम्बी माने। आशय यह है कि अल्पायु योग 30–35 वर्ष, मध्यायु 45–50 वर्ष व दीर्घायु 65–70 वर्ष व सुदीर्घायु 75–85 वर्ष मानी जा सकती है।

उपसंहार

आयु प्रकारों में ग्रह योगों से उत्पन्न आयु अर्थात् योगायु सर्वश्रेष्ठ है। यदि इसमें इदमित्थतया का आग्रह न किया जाए तो सामान्यतः जीवनावधि का ठीक–ठीक विस्तार मोटे तौर पर बताया जा सकता है। जैमिनीय मत की भी खण्डात्मक आयु इसी श्रेणी में रखी जा सकती है। लेकिन आयु का स्पष्टीकरण तो मनबहलाव ही है।

इसके बाद दशायु का विचार करना चाहिए। पाराशरीय मत का अध्ययन कर मारक दशान्तर्दशा का विचार कर व योगायु से प्राप्त अनुमान के साथ उसका समन्वय कर मारक दशा का निर्णय करना चाहिए। "इतने ही वर्ष की आयु होगी हम इसके पक्षधर नहीं हैं। आयु तो योगिगम्य पदार्थ है। तथापि ज्योतिष शास्त्र की सहायता से हम मार्ग–निद काफी सटीक ढंग से ले सकते हैं। लग्न शरीर है व चन्द्रमा प्राण है। देह व प्राण की मजबूती आयु बढाती है। इन पर यदि शुभ प्रभाव भी हो तो आयु और बढ़ जाएगी। । लग्नेश की अति बलवत्ता होने पर आय दीर्घ होती है, यह निविय यदि लग्नेश बली होकर लग्न में ही बैठ जाए या केन्द्र में हो तो शुभ त्रिकोणों में बैठकर उसे देखते हों तो व्यक्ति लम्बे समय तक सुख भोगते हुए जीवित रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

01.	बृहज्ज्योतिःसार	भाषानुवादक – पं0 श्री सूर्यनारायण सिद्धान्ती	तेजकुमार बुक डिपो प्रा लिमिटेड	उन्नीसवाँ	2000	पोस्ट बॉक्स 85, 1 त्रिलोकनाथ रोड, लखनऊ
02.	बृहज्ज्यौतिषसारः	सम्पादक – श्री रूप नारायण शर्मा	ठाकूर प्रसाद पुस्तक भण्डार			कचौड़ीगली, वाराणसी।
03.	चमत्कार चिन्तामणि	पं0 राजाराम ज्योतिषी फर्रूखाबाद	तेजकुमार बुक डिपो प्रा लिमिटेड	चतुर्थ संशोधत संस्करण	2003	पोस्ट बॉक्स 85, 1 त्रिलोकनाथ रोड, लखनऊ
04.	पराशर स्मृति	पृ0 गुरूप्रसाद शर्मा द्वारा भाषानुवादित	बाबू हरिनारायण वर्मा बुकसेलर	प्रथम संस्करण	1923 ई0	नागेश्वर प्रेस, बनारस
05.	Astrology Yoga Collections	Internet	Transmitted in 2009			www.Wikipedia.org
06.	भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन	नवम संस्करण	1981	भारतीय ज्ञानपीठ, बी 45/47, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।
07.	भृगु संहिता फलित प्रकाश	मू0 लेखक दृ भृगु ऋषि व्याख्याकार – प्रेम कुमार शर्मा	देहाती पुस्तक भण्डार		2009	चावड़ी बाजार, दिल्ली ।
08.	अष्टाध्यायी	पाणिनी	निर्णय सागर प्रेस			रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, सोनीपत
09.	अथर्ववेद	सायण भाष्य, शंकर पांडुरंग पंडित	निर्णय सागर प्रेस		1962	विश्व विद्यालय शोध संस्थान, होशियारपुर।
10.	अथर्ववेद संहिता	सातवलेकर श्रीपाद दामोदर	स्वास्थ्य मंडल		1950	पारडी, सूरत
11.	अत्ति स्मृति	मोर मनसुख राय	गुरू मंउल आश्रम		1953	कलकत्ता
12.	अभिज्ञान शाकुन्तल	कालीदास	मोतीलाल बनारसी दास		1973	वाराणसी

[41] लग्नाधीशोऽतिवीर्यो यदि शुभविगैरीक्षितः केन्द्रयातैदद्यादायुः सुदीर्घ गुणगणसहितं श्रीयुतं मानवानाम् । सौम्याः केन्द्रालयस्था जनुषि च रजनीनायके स्वीयतुङ्गे। वीर्याढ्ये लग्ननाथे वपुषि च शरदां षष्टिरायुर्नराणाम्।।

– जातकालंकार, डॉ0 सुरेश चन्द्र मिश्र, आयुर्दायाध्याय, अ0–5, श्लोक सं0–2, पृ0 सं0 – 115।